संजय सिंह बैस की कविताएँ

ग्राम- मझिगवां, पोस्ट-लमसरई
जिला –सिंगरौली, मध्यप्रदेश
sanjays771990@gmail.com

घुटन

अचानक सर्द और स्याह-सा महसूस होने लगा
उम्मीद का दीया
अब अपनी अंतिम नियति पर जा पहुंचा
मेरी देह में इक झुरझुरी-सी दौड़ पड़ी

जो सपना अपनी खुली आँखों से मैं देखने का
आदी था
वे आँखें अब बंद होने लगीं

मैंने देखा
अपनी इन्हीं मिचमिचाती आँखों से
लम्बी मूँछ वाला एक आदमी
जिसकी आँखें सुर्ख और डरावनी थी
दरवाजे से ही बिना कुछ बोले
वापिस जाने लगा।

मैंने लड़खड़ाई आवाज में
कहा सुनो
वह रुका
मेरी तरफ देखकर भी कुछ नहीं बोला
बस शांत खड़ा हल्का-सा मुस्कुराया

आखिर में मैं केवल इतना पूछ पाया
कुछ कहना है शायद आपको

"अब तुम वह नहीं रहे"
कहकर
मुस्कराता तेजी से कमरे के बाहर
निकल गया।

मैंने महसूस किया
खुद में जो बदलाव मैंने किये
उसके बाद
मैं केवल एक राख के रूप में बचा था
जो मुझे
मेरे ज़िन्दा होने का भ्रम दे रहा था।

अब उसके जाने के बाद
घुटन कुछ ज्यादा बढ़ गयी थी
क्योंकि
मैंने अपने अस्तित्व को रीढ़विहीन कर रखा था ।

बुनता हूँ रोज नए सपने

बुनता हूँ
रोज
नए सपने

समय से लड़ने की
नौकरी की चाहत के साथ
प्रेमिका के आँखों में
डूब जाने की
और
और भी बहुत कुछ.....

लेकिन
आँख खुलते ही
बिखर जाते हैं
सारे सपने
झूठ की तरह।

मां और ईश्वर के बीच संवाद

मां पूछ बैठी ईश्वर से
सुगिया का क्या कुसूर
किसी को पता नहीं
आप ही बताओ
देशद्रोह का मुकदमा कैसा?

ईश्वर मुस्कुराए
बोले यही कुसूर है सुगिया का
कि वह बेकुसूर है।

माँ बोली बेकुसूर होना
अपराधी होना है क्या?

ईश्वर बोले- "बिल्कुल सच
बेकसूर हो, तो अपराधी घोषित कर जेल में डाल
दिए जाओगे।"

माँ से रहा नहीं गया
एक सवाल और पूछ बैठी
"अगर हम अपराधी हो गए तो?"

कुछ नहीं होगा
नाम होगा
राजनीति में आने का
यह सुनहरा अवसर होगा।

निरपराध माँ
ख़ुद को
अपराधी
सुगिया मानती रही।

बेरोजगारी का दंश

आँखों में आँसू
देख दीवारें
बोल नहीं पा रहीं
महसूस कर रहीं
युवाओं के दर्द को

सत्ता के तमाशों से
उन्हें परेशान देख
बेचैन हो जाती दीवारें

बेरोजगारी का दंश
नहीं जाने देता उन्हें घर
त्यौहारों पर भी

बंद कमरे में
उनके आँसू देख
दीवारें भी नहीं रोक पातीं
खुद को आँसू टपकाने से

घर की याद में सिसक
वह बिस्तर पर
औंधे मुँह
निराश सो जाता

शहर को जश्न में डूबा देख
तड़प उठतीं दीवारें
तुम्हारी पीड़ा की एक मात्र साक्षी
सब कुछ कह जाती दीवारें।

सुनो द्रोणाचार्य

सुनो द्रोणाचार्य

हमने हमेशा तुम्हें
पूजा
तुमने भले
स्वीकार नहीं किया।

मुझे
घर से मिला था
संस्कार
गुरु को भगवान से
भी ऊँचा बताया था
माँ ने

आज जब माँ की
यह बात याद आती है
तो याद कर लेता हूँ
गुरु का चेहरा
लेकिन उनके
एक नहीं
अनेक चेहरे
दिखाई पड़ते हैं।

फिर माँ के भोलेपन
पर मुस्कुराता हूँ
और मां से
पूछ बैठता हूँ-
आप तो कभी
विद्यालय गयी नहीं
फिर गुरु को भगवान से
बड़ा क्यों मानती हैं?

माँ ने कहा-
प्रवचनकर्ता
ऐसा कहा करते हैं।
मैंने कहा
अगर आप
विद्यालय गयी होतीं
तो आप कभी
ऐसा नहीं करतीं।

मेरी आँसुओं को
देखकर वह बोली-
का हुआ
हमारे लल्ला को

मैंने कहा एक गुरु द्रोण थे
आपने सुना है
वह बोलीं
नहीं।

मैंने कहा
वे अपने शिष्य से
अंगूठा माँग लिए थे

माँ आश्चर्य से
मुझे एकटक
देखने लगी

मैंने कहा
आज के गुरु
अंगूठा नहीं माँगते
जिन्दगी से
खेलते हैं....

माँ के आंसू नहीं
रूक रहे थे
और वह
बोलती चली जा रहीं थी
अब लल्ला को
कभी स्कूल
नहीं भेजूंगी।

तुम मुस्कुरायी क्यूं ?

तुम्हारी मुसकराहट
आकर्षित की उसे
उसने भी बिखेर दी
रहस्यमयी मुस्कान

तुम समझ न पायी
उसके करीब चली गयी
देव तुल्य
समझ बैठी

आशीष देने के बहाने

तुम्हे छुआ
तुम कुछ नहीं बोली
तुम्हारी मौन को
वह सहमति समझ बैठा

वह एक दिन
तुम्हारे जिस्म पे
हाथ लगाया

उसका असली चेहरा देख
तुम बर्दाश्त कर नहीं पायी
जड़ दिया तमाचा
वह मौन

उसका मौन
किसी बड़े अंदेशे का
संकेत था

तुम्हारा तमाचा
उसे नागवार गुजरा
वह तुम्हे
हर जगह
बदनाम करने की
कोशिश करने लगा

तुम कब तक
बचती रहोगी
उसके फैलाए जाल से।